प्रवचन नं. २७८, श्लोक-१३७, गाथा-२०१, २०२, गुरुवार, आषाढ़ कृष्ण ११
दिनाङ्क १९-०७-१९७९

समयसार, २०० गाथा का अन्तिम पैरेग्राफ है। गाथा में क्या है ? कि धर्मी जीव उसे कहते हैं कि जो अपना आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसा अनुभव करता है और उसे जो रागादि आते हैं, उन्हें पर जानकर छोड़ देता है। यह गाथा है। समझ में आया ? धर्म ऐसी चीज़ है, अपूर्व चीज़ है। सम्यग्दृष्टि अपना पूर्ण आनन्दस्वरूप, शुद्ध अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके सन्मुख होकर; संयोग, निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर अपनी दृष्टि सम्यग्दर्शन करता है, उसे 'अप्पाणं' आत्मा का ज्ञान हुआ। मैं तो आनन्द हूँ, मैं सुख से भरपूर भण्डार हूँ। मुझमें जो रागादि दिखते हैं, वह परवस्तु है, विपाक विकार है, वह दुःख है। ऐसा अपना स्वरूप जानकर राग को छोड़ देता है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! बात तो बहुत आ गयी है।

अब यहाँ (कहते हैं), **जब तक अपने में चारित्रमोह सम्बन्धी रागादिक रहता है...** सम्यग्दर्शन हुआ। आत्मा का अनुभव (हुआ), शुद्ध चैतन्यस्वरूप पवित्र भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन में अनुभव हुआ परन्तु अनुभव होने पर भी सर्व राग से रहित नहीं हो जाता। यह कहते हैं। **जब तक अपने में चारित्रमोह सम्बन्धी रागादिक रहता है...** दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी का तो नाश किया है। अपने आनन्दस्वरूप के अनुभव में दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी का तो नाश होता है। दूसरा कोई उसका उपाय नहीं है। अपना आत्मा आनन्द, सच्चिदानन्द प्रभु, शुद्ध आनन्दकन्द है, उसका अनुसरकर अनुभव करना, वह अनुभव धर्म है, वह सम्यग्दर्शन है, वह सम्यग्ज्ञान है, वह सम्यक्चारित्र का अंश है। आनन्द में पूर्ण रमणता न हो, तब तक ज्ञानी को भी राग आता है। वह राग और द्वेषादि रहते हैं। रागादिक है न ? द्वेष का अंश है, विषयवासना है, रति-अरति उत्पन्न होती है।

जब तक... सम्यग्दृष्टि जीव रागादिक में। जब तक वह चारित्र का दोष होता है, तब तक धर्मी जीव उन रागादिक में **तथा रागादि की प्रेरणा...** निमित्त से कथन है। राग है तो राग का निमित्त है और उससे परद्रव्य की क्रिया—उपादान में होती है, उसमें राग की प्रेरणा निमित्त कहने में आयी है। शरीर की क्रिया आदि होती है, वह अपने से नहीं होती।

समझ में आया ? शरीर की, वाणी की क्रिया होती है, वह अपने से नहीं होती परन्तु रागादि की प्रेरणा अथवा निमित्त राग भी है तो निमित्त है और शरीर की क्रिया आदि उपादान स्वयं से होती है।

प्रेरणा से जो परद्रव्यसम्बन्धी शुभाशुभ क्रिया में प्रवृत्ति करता है... ऐसा निमित्त से कथन है। परद्रव्य की क्रिया की प्रवृत्ति आत्मा कर नहीं सकता परन्तु अज्ञानी लोग ऐसा देखते हैं कि देखो! यह ज्ञानी भी व्यापार-धन्धा करता है, विषय करता है, स्त्री के साथ विवाह करता है। तो कहते हैं कि उस प्रवृत्ति की पर्याय तो अज्ञानी का आत्मा भी नहीं कर सकता। परन्तु यहाँ उस प्रवृत्ति को देखकर लोग ऐसा कहते हैं कि देखो! प्रवृत्ति तो करता है। तो कहते हैं कि राग की प्रेरणा निमित्त है और जड़ की क्रिया स्वतन्त्र है, तो उसमें प्रवृत्ति करता है, ऐसा देखने में आता है। आहाहा! 'प्रेरणा' (शब्द) है न ?

शुभाशुभ क्रिया में प्रवृत्ति करता है... आहाहा! निश्चय से तो देह की हलन-चलन क्रिया होती है, उसे तो अज्ञानी भी नहीं कर सकता। परद्रव्य की पर्याय, क्योंकि परद्रव्य अपनी पर्यायरहित नहीं रहता। परद्रव्य अपनी पर्यायरूपी कार्य बिना द्रव्य होता नहीं तो परद्रव्य की पर्याय का कार्य परद्रव्य करता है तो आत्मा उसे करे, ऐसा कभी नहीं होता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, भाई! कर्म की पर्याय है, वह भी आत्मा नहीं करता और आत्मा में जो राग होता है, वह कर्म नहीं करता। अपनी कमजोरी से सम्यग्दृष्टि को राग-द्वेषादि होते हैं परन्तु उस समय प्रेरणा अर्थात् निमित्त से बाह्य की प्रवृत्ति भी दिखती है। धन्धा-पानी... आहाहा! उस शुभाशुभ क्रिया में प्रवृत्ति करता दिखायी देता है, ऐसा लेना। करता है, यह निमित्त से कथन है। कर नहीं सकता। परद्रव्य की क्रिया कर नहीं सकता परन्तु करता है, ऐसा लोगों को भासित होता है, इस अपेक्षा से कथन है।

उन प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में यह मानता है कि - यह कर्म का जोर है;... क्या कहते हैं ? कि अपनी पर्याय में विकार का बहुत जोर है तो वह कर्म का जोर निमित्त से कहने में आया है। कर्म अपनी पर्याय को करे और कर्म की पर्याय को आत्मा करे, ऐसा कभी नहीं होता। परन्तु यहाँ कर्म का जोर निमित्त से कहा है। वास्तव में तो अपनी कमजोरी का- निर्बलता का जोर है। समझ में आया ? आहाहा! अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, अनन्त गुण-गम्भीर, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु आत्मा, ऐसा अन्तर्मुख होकर

सम्यग्दर्शन हुआ तो भी उसे चारित्रमोह के राग-द्वेष तो आते हैं, परन्तु वह राग-द्वेष और (उनकी) प्रेरणा से बाह्य की क्रिया करता है, ऐसा दिखता है परन्तु उसका वह स्वामी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में यह मानता है कि – यह कर्म का जोर है;... कर्म का (जोर, यह) निमित्त से कथन है। अपनी कमजोरी का जोर है। सम्यग्दृष्टि को भी कमजोरी का (जोर है)। श्रेणिक राजा क्षायिक समकित और समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते थे। श्रेणिक राजा। उनके पुत्र ने जेल में डाल दिया। पुत्र उसकी माता के पास गया (और कहा), 'माता! मैंने मेरे पिता को जेल में डाला है और मुझे राज करना है।' माता कहती है, 'अरे! बेटा! तेरे जन्म के समय पहले मुझे ऐसा स्वप्न आया था कि तेरे पिताजी का कलेजा खाना है। तेरा जन्म हुआ तो मैंने तुझे कचरे में डाल दिया था। तेरे पिता मेरे पास आये और पूछा, क्या हुआ? बालक कहाँ है? 'मैंने तो डाल दिया।' अरे! यह क्या किया? स्वप्न ऐसा आया था कि यह बालक है, वह आपका कलेजा खायेगा, ऐसा स्वप्न आया। जहाँ बालक को डाला था, वहाँ ले गये। जहाँ डाला था, वहाँ राजा गया। वहाँ कूकड़ा था, उसने चोंच मारी थी। बालक को पीड़ा हुई थी, इसलिए चिल्लाता था। उस समय श्रेणिक राजा चूसने लगा। अरे! तेरे पिता ने तो ऐसा किया है। अरे! माता! मेरी बहुत भूल हुई।

फिर जेल को तोड़ने गया तो राजा को ऐसा लगा... थे क्षायिक समकिती और समय-समय में तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं, तो भी ज्ञान की भूल, परद्रव्य की ऐसी हो गयी कि यह मुझे मारने आया है, तथापि वह ज्ञान अज्ञान नहीं है। समझ में आया? आहाहा! अरे! यह मुझे मारेगा तो! हीरा चूस लिया। मरण को प्राप्त हुए, तथापि वह राग का दोष है, चारित्रदोष है, उसमें समकित में दोष नहीं है और उस समय भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं, उसमें विघ्न नहीं है। आहाहा! समझ में आया? हीरा चूसा, देह छोड़ दी, अपघात किया। तो कहते हैं, नहीं। उन्होंने किया ही नहीं। वे तो राग-द्वेष हुए, उन्हें जानते थे कि, द्वेष है, वह मेरी चीज़ नहीं है और देह की क्रिया छूटने की थी तो छूटी। उसका छूटने का काल था। उसका स्वामी अपने को मानकर मैंने शरीर को छोड़ा, ऐसा धर्मी नहीं मानता। अतः चारित्र का दोष आता है, ऐसा कहते हैं और वह कर्म का जोर मानता है। अपनी निर्बलता का जोर है, उसे कर्म का (कहा), वह निमित्त से कथन है।

मेरी पर्याय में मेरी कमजोरी है। मैं द्रव्य हूँ, मैं तो शुद्ध चिदानन्दमूर्ति हूँ। उसमें तो कमजोरी या विरुद्धता या विपरीतता या अल्पता, अपनी पूर्ण चीज़ में तो है ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ की दृष्टि होने पर भी, अनुभव होने पर भी चारित्रदोष का राग आता है, वह अपनी कमजोरी से आता है। यहाँ कर्म का जोर कहा गया है। कर्म तो परद्रव्य है। परद्रव्य किसी परद्रव्य की पर्याय तीन काल में नहीं कर सकता। हैं? आहाहा!

कहते हैं कि **उससे निवृत्त होने में ही मेरा भला है।** सम्यग्दृष्टि तो ऐसा मानता है कि राग से निवृत्त होने में ही मेरा भला है। राग में प्रवृत्त होना, वह मेरा भला नहीं, वह तो दुःख है, जहर है। आहाहा! भले चौथे गुणस्थान में हो, उस सम्बन्धी आत्मा राग से भिन्न है और अपने आनन्द अनन्त स्वरूप के स्वभाव से अभिन्न है, ऐसा अनुभव हुआ तो भले वह राजपाट में पड़ा हो तो भी ४३ प्रकृतियों का बन्ध तो होता ही नहीं। क्या कहा, समझ में आया? ४३ प्रकृति है, सम्यग्दृष्टि हुआ, राजपाट में पड़ा हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों और युद्ध में भी कदाचित् चढ़ गया हो तो भी आत्मा के अनुभव में मैं आनन्द हूँ, मैं यह नहीं, यह नहीं, (ऐसा अनुभव वर्तता है)। उसका कारण ४३ प्रकृति, समकिती युद्ध में खड़ा हो तो भी नहीं बँधती। आहाहा! और मिथ्यादृष्टि साधु हुआ हो, पंच महाव्रत पालन करता हो परन्तु यह राग मेरा स्वभाव है, राग से मुझे लाभ होगा—ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! छह खण्ड के राज में रहता हो, आत्मा का ज्ञान करके रागादि छोड़ने की भावना में पड़ा है तो वह मोक्षमार्गी है। और दिगम्बर सन्त हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पालन करता है, पंच महाव्रत पालन करता है, परन्तु राग के कण को अपना मानकर लाभ मानता है तो, वह संसारमार्ग है। आहाहा! ऐसा अन्तर है, प्रभु!

यहाँ कहते हैं **उससे निवृत्त होने में ही मेरा भला है।** समकिती ऐसा मानता है। **वह उन्हें रोगवत् जानता है।** राग, वासना वह तो रोग आया। आहाहा! जैसे रोगी रोग का उपाय करता है तो भी रोग के उपाय और रोग को भला नहीं जानता, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को राग आता है और राग का उपचार भी करता है, शरीरादिक से और विषयादि से, परन्तु उन्हें भला नहीं मानता, अपना कर्तव्य नहीं मानता। मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। मैं तो मेरी भूमिका में रहनेवाला ज्ञाता-दृष्टा हूँ। आहाहा! समझ में आया? **उन्हें रोगवत् जानता है। पीड़ा सहन नहीं होती...** आहाहा! अनुभवी सम्यग्दृष्टि को भी राग और द्वेष आये तो उसे सहन

नहीं होता तो वह क्रिया, चेष्टा में आ जाता है। है ?

पीड़ा सहन नहीं होती, इसलिए रोग का इलाज करने में प्रवृत्त होता है... आहाहा! **तथापि उसके प्रति उसका राग नहीं कहा जा सकता;...** राग का प्रेम ही नहीं है, छूट गया है। पूरा अमृत का पिण्ड प्रभु, अमृत के सागर का जहाँ स्वाद अन्दर सम्यग्दर्शन में आया, वहाँ राग को रोग समान जानकर उसका उपचार करता है, वह भी रोग का उपचार है, मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! यहाँ तो मूल चीज़ की बात है, भाई! और सम्यक् आत्मा के दर्शन बिना व्रत, तप, भक्ति, पूजा लाख-करोड़ करे तो भी वह धर्म नहीं है, संसार है। शुभभाव है, संसार है। आहाहा! और छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह करे, तो भी समकिती है तो मोक्षमार्ग में है। आहाहा! वह राग को रोग समान मानता है, राग को जहर जानता है। यह तो जहर का प्याला है। जैसे काला नाग देखे, काला नाग, वैसे धर्मी राग को काले नाग समान जानता है। आहाहा! समझ में आया ?

क्या कहते हैं ? **क्योंकि जिसे वह रोग मानता है, उसके प्रति राग कैसा ? वह उसे मिटाने का ही उपाय करता है...** राग को मिटाने का ही सम्यग्दृष्टि उपाय करता है **और उसका मिटना भी अपने ही ज्ञानपरिणामरूप परिणमन से मानता है।** आहाहा! उस राग का नाश करना भी किस प्रकार होता है ? कोई क्रिया करूँ, दया, दान, व्रत से राग नाश होता है, ऐसा वह नहीं मानता। मेरा आनन्दस्वरूप प्रभु ज्ञानस्वरूप ज्ञायक आत्मा के शुद्ध परिणमन से राग मिटता है। समझ में आया ? है ? आहाहा! उसे मिटाने का उपाय, उसका मिटना भी अपने ज्ञानपरिणाम; ज्ञान अर्थात् आत्मा, शुद्ध भगवान आत्मा का परिणमन। आहाहा! वीतरागी परिणमन से राग को मिटाना चाहता है। राग से राग को मिटाना, ऐसा नहीं है। राग को राग से मिटाना, ऐसा नहीं है, कि भई! अशुभराग है तो मैं शुभराग दया, दान करूँ तो राग मिटे, ऐसा है नहीं। आहाहा! वह अशुभराग और शुभराग, धर्मी को अपने वीतरागमूर्ति स्वरूप का अनुभव होने से राग का मिटाना अपनी शुद्ध परिणति से मिटाना चाहता है। समझ में आया ? आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह तो पण्डितजी ने लिखा है, जयचन्दजी पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है कि, यह कहते हैं (कि) ज्ञानी को आत्मा का भान है और राग को छोड़ देता है, उसका अर्थ क्या है ? गाथा आयी न ? उसका यह अर्थ है। आहाहा!

पहली चीज भी यह सम्यग्दर्शन पाना, वह क्या चीज़ है? आहाहा! यह कोई व्रत, तप, यात्रा, दान, दया और लाखों-करोड़ों मन्दिर बनाना, उससे सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरपूर, अतीन्द्रिय अनन्त, अतीन्द्रिय अनन्त गुण का पिण्ड भण्डार है और वह भी पूर्णानन्द पूर्ण है। आहाहा! उस ओर की दृष्टि झुकने से पूर्ण आत्मा को ही अपना मानता है, एक समय की पर्याय को भी अपने में नहीं मानता, वह तो हेय है। आहाहा! राग तो हेय है परन्तु जो पर्याय द्रव्य का स्वीकार करती है, वह पर्याय भी हेय है। पर्याय के ऊपर लक्ष्य जाए तो हेय है। वह पर्याय द्रव्य का लक्ष्य करती है तो अनुभव होता है, तो पर्याय द्रव्य को मानती है। मैं तो शुद्ध परिपूर्ण आनन्द हूँ। सूक्ष्म बात है, भगवान! आहाहा! धर्म कोई अलौकिक वीतराग (मार्ग है)।

वीतराग परमात्मा माने, वह अन्यत्र कहीं है नहीं। वीतराग के अतिरिक्त किसी जगह इस धर्म की चीज़ की गन्ध नहीं है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उसके सम्प्रदाय में समझना कठिन है। आहाहा! और इसके अतिरिक्त जन्म-मरण के अन्त नहीं आयेगा। चौरासी के अवतार, एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। मरण भी अकस्मात् हो जाता है। आहाहा! ख्याल भी नहीं होता कि यह क्या हुआ? निरोग बैठा हो और फू... ऐसा हो जाए, शरीर छूट जाए! निरोग बैठा हो, कोई कुछ हो नहीं, रोग भी न हो। मलकापुरवाला एक भाई कहता था। क्या स्वरूपचन्द न? मलकापुर का स्वरूपचन्द है, होशियार है। छोटी उम्र का है, अभी तो विवाह हुआ। कपड़े का बड़ा व्यापार करता है। दस-दस हजार रुपये का कपड़ा दुकान में रखता है। अभी भी दुकान है। अभी विवाह किया है। पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक कण्ठस्थ है। मोक्षमार्गप्रकाशक कण्ठस्थ है। वह कहता था, महाराज! हम एक बार बैठे थे, मेरा मित्र बैठा था। २८ वर्ष की उम्र का था। कुछ नख में रोग नहीं। बात करते थे। बात करते-करते फू... हो गया, मैंने देखा तो मर गया, देह छूट गयी। फू... इतना हुआ, बस! आहाहा! खून अटक गया। फू... इतना हुआ। ऐसे देखूँ तो देह छूट गयी। अट्ठाईस वर्ष की उम्र। स्वरूपचन्द है, मलकापुर। लड़का बहुत होशियार है। मोक्षमार्गप्रकाशक के बहुत प्रश्न करे। वाँचन बहुत है, पहले से वाँचन है, अब तो विवाह हो गया। वह कहता था कि मेरा मित्र था, बातें करते थे। कोई रोग नहीं। ऐसे जहाँ देखा, फू... हुआ। जहाँ देखा,

वहाँ मर गया। यह देह की स्थिति! आहाहा! देह कब, किस स्थिति में छूटेगा, इसके समाचार कहीं पहले आयेंगे? कि लो, एक घण्टे बाद तुम्हारी मृत्यु होगी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी को राग आता है और राग से देह की क्रिया भी कोई होती है, वह राग से नहीं होती। यहाँ तो राग की प्रेरणा, निमित्त से बात की है। देह की क्रिया का भी स्वामी नहीं और राग का भी स्वामी नहीं है। वह तो स्वस्वरूप का स्वामी है। आत्मा में ४७ शक्तियाँ हैं। अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें ४७ के नाम दिये हैं, समयसार। (उसमें) ४७वीं शक्ति ऐसी ली है, स्वस्वामीसम्बन्धरूप शक्ति। धर्मी है, वह स्वस्वामीसम्बन्धरूप शक्ति का अर्थ क्या? मैं तो द्रव्य शुद्ध हूँ, गुण शुद्ध हूँ, पर्याय शुद्ध हूँ—वह मेरा स्व है, उसका मैं स्वामी हूँ, उसके साथ मेरा सम्बन्ध है। राग का स्वामी, राग के साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं। आहाहा! ४७ शक्तियाँ हैं न (उसमें) अन्तिम स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति। अपने में ही स्वस्वामी स्वभाव पड़ा है तो द्रव्य की जहाँ दृष्टि, अनुभव हुआ तो धर्मी अपने शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण और शुद्ध पर्याय, ज्ञान में इतना ही मैं आत्मा हूँ, ऐसा मानता है। आहाहा! दृष्टि में द्रव्य त्रिकाली है, परन्तु दृष्टि के साथ जहाँ ज्ञान हुआ, वह शुद्ध द्रव्य, गुण और पर्याय, वे तीन मेरे स्व हैं और मैं उनका स्वामी हूँ (ऐसा मानता है)। आहाहा! समझ में आया?

यह कहते हैं कि, रागादि आते हैं तो उनका नाश करने का उपाय क्या मानता है? कि आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसका परिणमन, वीतरागी परिणमन हो, उससे राग मिटाना चाहता है। राग की क्रिया करते-करते राग मिटेगा, ऐसा नहीं मानता। आहाहा! मार्ग बहुत कठिन। **अतः सम्यग्दृष्टि के राग नहीं है।** इस कारण सम्यग्दृष्टि को राग नहीं, ऐसा कहने में आया है। **इस प्रकार यहाँ परमार्थ अध्यात्मदृष्टि से व्याख्यान जानना चाहिए।** है? यहाँ अध्यात्मदृष्टि की व्याख्या है। आहाहा! चरणानुयोग में व्यवहार के कथन हैं, वे सब जाननेयोग्य हैं। यह अध्यात्मदृष्टि से व्याख्यान हैं। आहाहा!

यहाँ मिथ्यात्व सहित राग को ही राग कहा है,... राग मेरी चीज़ है और शुभराग से मुझे लाभ होगा, ऐसे मिथ्यादृष्टि के राग को ही राग कहने में आया है। सम्यग्दृष्टि को राग का राग कहने में नहीं आया है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। यह तो बाह्य की प्रवृत्ति करे, थोड़ी क्रिया (करे), भगवान के दर्शन करे, व्रत करे और अपवास करे, (इसलिए मानो)

हो गया धर्म। धूल में भी धर्म नहीं। इससे तो अनन्तगुणी (क्रियाएँ की हैं)। नववें ग्रैवेयक में गया तो इतनी क्रिया की है कि इतनी तो अभी है नहीं। ऐसी शुक्ललेश्या की है कि नौवे ग्रैवेयक गया, परन्तु मिथ्यादृष्टि राग से धर्म मानता था और देह की क्रिया मैं कर सकता हूँ, ऐसा मानता था। वह तो देह जड़-मिट्टी है। उसका हिलना-चलना, बोलना वह क्रिया तो जड़ की जड़ से होती है। आत्मा की प्रेरणा से बिल्कुल नहीं। आहाहा! यह मानना...

यहाँ मिथ्यात्व सहित राग को ही राग कहा है, मिथ्यात्व रहित चारित्रमोह-सम्बन्धी परिणाम को राग नहीं कहा;... ठीक! **इसलिए सम्यग्दृष्टि के ज्ञानवैराग्यशक्ति अवश्य ही होती है।** अवश्य होती ही है। आहाहा! धर्म की पहली सीढ़ी, सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, सम्यग्दर्शन... आहाहा! उसमें सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य शक्ति अवश्य है। अपने स्वरूप का ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से वैराग्य, दोनों अवश्य है। वैराग्य की व्याख्या—स्त्री, कुटुम्ब छोड़ दिया, धन्धा छोड़ दिया, वह वैराग्य नहीं। वैराग्य तो उसे कहते हैं, प्रभु! पुण्य-पाप अधिकार में गाथा आयी है कि शुभ-अशुभभाव से विरक्त होना। रक्त है, तो विरक्त होना और स्वरूप की दृष्टि में अस्तित्व का ज्ञान होना, वह ज्ञान और वैराग्य दो शक्तियाँ समकिती को होती है। आहाहा! समझ में आया? वैराग्य अर्थात् यह स्त्री, कुटुम्ब छोड़ दिया, शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य ले लिया तो वह वैराग्य है, वह वैराग्य नहीं।

वैराग्य तो परमात्मा उसे कहते हैं, पुण्य-पाप अधिकार में आ गया है कि शुभ-अशुभभाव से विरक्त। शुभ-अशुभभाव से विरक्त और स्वभाव में रक्त, उसे वैराग्य और उसे ज्ञान कहा जाता है। पण्डितजी! आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

मुमुक्षु : पहले बाहर से उदासीन हो, फिर अन्दर से उदासीन हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर से उदासीन है, वह उदासीन है। आहाहा! यह माता नहाती हो और एक खाट आड़े रखी हो। पहले ऐसा था न? अब माता वस्त्र बिना खड़ी हो गयी हो और उसका पुत्र घर में आ गया, नजर करता होगा? माता नग्न खड़ी हो गयी अन्दर। उसे खबर नहीं कि बालक आयेगा। वहाँ नजर करता होगा? अरे! माता, जननी, जिसके गर्भ में सवा नौ महीने (रहा)। उस जननी पर नजर कैसी? हैं? आहाहा! उसी प्रकार अपने स्वभाव की रुचि और दृष्टि से; रागादि आते हैं, उसमें वे मेरे हैं, ऐसी नजर कैसी? आहाहा!

ऐसा मार्ग है, भाई! कठिन लगे परन्तु मार्ग तो यह है। आहाहा! दुनिया को समझाना आवे, न आवे, इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

ग्यारह अंग का ज्ञान भी अनन्त बार हुआ, करोड़ों श्लोक कण्ठस्थ! करोड़ों नहीं, अरबों, उससे क्या? उस ज्ञायकस्वभाव को स्पर्श करके ज्ञान होना, उसका नाम ज्ञान और उसकी प्रतीति (होना), ज्ञान में जो पूर्ण प्रभु भासित हुआ, उसे ज्ञान में ज्ञेय बनाकर प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन। आहाहा! और उस स्वरूप में रमणता, वह आनन्द में रमणता, रमना, वह चारित्र है। कोई पंच महाव्रत के परिणाम आदि चारित्र नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ की यह दिव्यध्वनि है। आहाहा! दुनिया को बैठे, न बैठे, स्वतन्त्र है। मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं कि समकिती को मिथ्यात्व का राग नहीं होता। **ज्ञानवैराग्यशक्ति अवश्य ही होती है। सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व सहित राग नहीं होता और जिसके मिथ्यात्व सहित राग हो, वह सम्यक्दृष्टि नहीं है।** आहाहा! आहाहा! चाहे तो शुभराग पंच महाव्रत का हो परन्तु यदि राग का प्रेम और रुचि हो तो वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि दिगम्बर जैन साधु होकर नौवे ग्रैवेयक गया। अपने आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं लेकर क्रियाकाण्ड में तल्लीन (हुआ), इतनी शुक्ललेश्या, शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी क्रोध न करे, इतनी मिथ्यात्वभाव में क्षमा (पालन की) परन्तु वह कोई धर्म नहीं है। आहाहा! शुक्ललेश्या से नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, उसके लिये आहार-पानी कुछ भी बनाया हो, ख्याल आवे तो ले नहीं। उसके लिये चौका बनाया हो और ले, यह तो बात ही नहीं है। समझ में आया? परन्तु यह तो चौका बनाया हो, ख्याल आ गया कि यह मेरे लिये बनाया होगा? तो प्राण जाए तो भी, उसके लिये बनाया है, ऐसा ख्याल आया, शंका पड़े तो ले नहीं। समझ में आया? ऐसे नौवें ग्रैवेयक जब दिगम्बर साधु होकर गया, परन्तु आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उस ओर की दृष्टि नहीं की। क्रियाकाण्ड की सावधानी वहाँ जिन्दगी निकाली। आहाहा!

अरे! कोई है शरण? चौरासी लाख अवतार, राग दया, दान में कोई शरण है? शरण तो प्रभु अन्दर अनन्त आनन्द, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु शरण है। वही मांगलिक है, वही उत्तम है और वही शरण है। अरिहन्त को मांगलिक तो व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा!

अरिहन्ता शरणं, मांगलिक में आता है न? वह तो व्यवहार है। अपना आत्मा विकल्प अर्थात् राग से रहित निर्विकल्प प्रभु आत्मा, वही अपने को शरण है। उसका आश्रय करना, वही धर्म है और वही शरण है। बाकी धूलधाणी। करोड़ों रुपये हो, अरबों रुपये हो, मिट्टी-धूल है। आहा! उस धूल अजीव को अपनी माने, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अजीव को जीव माने, वह तो अजीव है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! मिथ्यात्वसहित राग नहीं होता **और जिसके मिथ्यात्व सहित राग हो वह सम्यक्दृष्टि नहीं है। ऐसे (मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि के भावों के) अन्तर को सम्यग्दृष्टि ही जानता है।** आहाहा! अज्ञानी तो बाहर की प्रवृत्ति देखे, व्रत, तप और नग्नपना। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को खबर पड़ती है, उसे खबर है कि यह क्रिया, प्रवृत्ति करता है परन्तु अन्दर राग को अपना मानता है, आत्मा का ज्ञान नहीं है। समझ में आया? उस **अन्तर को सम्यग्दृष्टि ही जानता है।** है न? **(मिथ्यादृष्टि और सम्यक्दृष्टि के भावों के) अन्तर को...** तफावत अर्थात् अन्तर, दो के बीच का अन्तर। क्या अन्तर है? मिथ्यादृष्टि का राग का प्रेम, सम्यग्दृष्टि का आत्मा का प्रेम, उसका अन्तर सम्यग्दृष्टि जानता है। आहाहा! ऐसी बात है। सम्प्रदाय को कठिन लगता है। आहाहा!

पहले तो मिथ्यादृष्टि का अध्यात्मशास्त्र में प्रवेश ही नहीं है... है? अध्यात्मशास्त्र, बापू! यह तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि है। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' 'ॐकार ध्वनि सुनि' महाविदेह में भगवान विराजते हैं, वहाँ अभी ॐकार ध्वनि खिरती है। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' यह बनारसीदास (का लिखा हुआ है)। बनारसी विलास है, उसमें यह लिखा है। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे, रचि आगम उपदेशे भविक जीव संशय निवारे।' योग्य प्राणी है वे मिथ्यात्व का नाश कर सकते हैं। अज्ञानी ने तो अनन्त बार सुना, विदेहक्षेत्र में अनन्त बार जन्म हुआ, समवसरण में अनन्त बार गया और हीरा के थाल, मणिरत्न के दीपक और कल्पवृक्ष के फूल से समवसरण में भगवान की अनन्त बार आरती उतारी। (उससे) क्या हुआ? वह तो राग है, वह तो विकल्प है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि का अन्तर—तफावत क्या है, वह सम्यग्दृष्टि

जानता है। आहाहा! अज्ञानी को तो खबर नहीं कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है? सूक्ष्म बात है, भाई!

पहले तो मिथ्यादृष्टि का अध्यात्मशास्त्र में प्रवेश ही नहीं है और यदि वह प्रवेश करता है तो विपरीत समझता है–व्यवहार को सर्वथा छोड़कर भ्रष्ट होता है.. अध्यात्मशास्त्र पढ़े, (उसमें) व्यवहार को हेय कहा है। तो अपने निश्चय के भान बिना व्यवहार को छोड़कर अशुभ में चला जाता है। समझ में आया? व्यवहार को छोड़कर, सर्वथा छोड़कर, हों! **भ्रष्ट होता है..** अर्थात् अशुभ भावों में प्रवर्तता है। आहाहा! **अथवा निश्चय को भलीभाँति जाने बिना...** अध्यात्म में अपना स्वरूप क्या कहा है? अपना आनन्दस्वरूप राग से भिन्न निर्विकल्प, आहाहा! उसे **निश्चय को भलीभाँति जाने बिना...** भलीभाँति अर्थात्? जैसा पूर्णानन्द स्वरूप है, ऐसा अनुभव हुए बिना, अनुभव करके जाने बिना। आहाहा! **व्यवहार से ही मोक्ष मानता है,...** वह तो व्यवहार से मोक्ष मानता है। है न? अन्तर्दृष्टि क्या वस्तु है, उसे तो जानते नहीं और अपने तो व्रत करना, तप करना, अपवास करना, भगवान की भक्ति करना, हमेशा दर्शन (करना), देव-गुरु-शास्त्र के दर्शन और दान आदि आता है न? संयम, छह आवश्यक आते हैं न? वे छह आवश्यक तो शुभभाव है। वे तो सम्यग्दृष्टि को होते हैं परन्तु जानता है कि यह तो दुःखरूप है। आहाहा! मेरी चीज़ को लाभदायक नहीं। अशुभ से बचने को आते हैं। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहार से ही मोक्ष मानता है,... देखो! दया पालना, व्रत करना, भक्ति करना, पूजा करना, रथयात्रा निकालना, गजरथ निकालना, उसमें पाँच-दस लाख रुपये खर्च करना—उसमें क्या है? वह राग की मन्दता हो तो पुण्य है। पुण्य को अपना मानता है तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ऐसा कठिन मार्ग है। **परमार्थ तत्त्व में मूढ़ रहता है।** परमार्थ तत्त्व भगवान ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द प्रभु, उस परमार्थ तत्त्व से तो अज्ञानी मूढ़ रहता है। अध्यात्म शास्त्र पढ़कर भी (मूढ़ रहता है)। आहाहा!

यदि कोई विरल जीव... विरल जीव **यथार्थ स्याद्वादन्याय से सत्यार्थ को समझ ले...** विरल जीव स्वरूप की दृष्टि करके; राग आता है, वह व्यवहार है, दुःखरूप है; निश्चय तो मेरी आनन्द की अनुभव दशा, वह निश्चय है। ऐसा कोई विरल जीव...

आहाहा! **स्याद्वादन्याय से सत्यार्थ को समझ ले...** कि निश्चय है, जब तक पूर्णता नहीं, तब तक व्यवहार भी आता है, यह स्याद्वाद है। आता है तो भी वह धर्म नहीं है। समझ में आया? निश्चयस्वरूप राग से, विकल्प की क्रिया से अत्यन्त भिन्न है। ऐसा भान होकर राग आता है परन्तु वह राग अपना स्वरूप नहीं है, अपने को लाभदायक नहीं है, ऐसा ज्ञानी मानता है। आहाहा! है? **स्याद्वादन्याय से...** ऐसा। निश्चयपूर्वक व्यवहार होता है परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है, ऐसा न्याय जानकर उसे होता है। आहाहा! व्यवहार आता है तो उससे धर्म का लाभ होगा, ऐसा नहीं मानता।

उसे अवश्य ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है... कोई विरल जीव यथार्थ स्वरूप की दृष्टि करके, राग को व्यवहार मानकर हेय मानता है और स्वरूप की दृष्टि बिना अकेले व्यवहार को छोड़कर अशुभ में चला जाए, वह भी अज्ञानी है और व्यवहार से मुझे धर्म होगा, निश्चय की दृष्टि बिना, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

वह अवश्य सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यह २०० गाथा का भावार्थ (हुआ)। २०० गाथा का सार यह है।

गाथा - २०१-२०२

कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति चेत् -

परमाणु-मित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागम-धरो वि।।२०१।।

अप्पाण-मयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो।।२०२।।

परमाणुमात्रमपि खलु रागादीनां तु विद्यते यस्य।
नापि स जानात्यात्मानं तु सर्वागमधरोऽपि।।२०१।।

आत्मान-मजानन् अनात्मानं चापि सोऽजानन्।
कथं भवति सम्यग्दृष्टिर्जीवाजीवावजानन्।।२०२।।

यस्य रागादीनामज्ञानमयानां भावानां लेशस्यापि सद्भावोऽस्ति स श्रुतकेवलिकल्पोऽपि ज्ञानमयस्य भावस्याभावादात्मानं न जानाति। यस्त्वात्मानं न जानाति सोऽनात्मानमपि न जानाति, स्वरूपपररूप- सत्तासत्ताभ्यामेकस्य वस्तुनो निश्चीयमानत्वात्। ततो य आत्मानात्मानौ न जानाति स जीवाजीवौ न जानाति। यस्तु जीवाजीवौ न जानाति स सम्यग्दृष्टिरेव न भवति।

ततो रागी ज्ञानाभावान्न भवति सम्यग्दृष्टिः।।२०१-२०२।।

अब पूछता है कि रागी (जीव) सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं होता? उसका उत्तर कहते हैं:-

अणुमात्र भी रागादिका, सद्भाव है जिस जीव को।
वो सर्व आगमधर भले ही, जानता नहिं आत्म को।।२०१।।

नहिं जानता जहँ आत्म को, अनआत्म भी नहिं जानता।
वो क्योंहि होय सुदृष्टि जो, जीव अजीव को नहिं जानता?।।२०२।।

गाथार्थ : [खलु] वास्तव में [यस्य] जिस जीव के [रागदीनां तु परमाणुमात्रम् अपि] परमाणुमात्र-लेशमात्र-भी रागादिक [विद्यते] वर्तता है [सः] वह जीव

[सर्वागमधरः अपि] भले ही सर्वागम का धारी (समस्त आगमों को पढ़ा हुआ) हो तथापि [आत्मानं तु] आत्मा को [न अपि जानाति] नहीं जानता; [च] और [आत्मानम्] आत्मा को [अजानन्] न जानता हुआ [सः] वह [अनात्मानं अपि] अनात्मा को (पर को) भी [अजानन्] नहीं जानता; [जीवाजीवौ] इस प्रकार जो जीव और अजीव को [अजानन्] नहीं जानता वह [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि [कथं भवति] कैसे हो सकता है?

टीका : जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है वह भले ही श्रुतकेवली जैसा हो तथापि वह ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता; और जो आत्मा को नहीं जानता वह अनात्मा को भी नहीं जानता क्योंकि स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता–इन दोनों के द्वारा एक वस्तु का निश्चय होता है; (जिसे अनात्मा का–राग का–निश्चय हुआ हो उसे अनात्मा और आत्मा–दोनों का निश्चय होना चाहिए।) इस प्रकार जो आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता वह जीव और अजीव को नहीं जानता; तथा जो जीव और अजीव को नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं है। इसलिए रागी (जीव) ज्ञान के अभाव के कारण सम्यग्दृष्टि नहीं होता।

भावार्थ : यहाँ 'राग' शब्द से अज्ञानमय रागद्वेषमोह कहे गये हैं। और 'अज्ञानमय' कहने से मिथ्यात्व–अनन्तानुबन्धी से हुए रागादिक समझना चाहिए, मिथ्यात्व के बिना चारित्र–मोह के उदय का राग नहीं लेना चाहिए; क्यों अविरत–सम्यग्दृष्टि इत्यादि को चारित्रमोह के उदय सम्बन्धी जो राग है सो ज्ञानसहित है; सम्यग्दृष्टि उस राग को कर्मोदय से उत्पन्न हुआ रोग जानता है और उसे मिटाना ही चाहता है; उसे उस राग के प्रित राग नहीं है। और सम्यग्दृष्टि के राग का लेशमात्र सद्भाव नहीं है ऐसा कहा है सो इसका कारण इस प्रकार है–सम्यग्दृष्टि के अशुभराग तो अत्यन्त गौण है और जो शुभराग होता है सो वह उसे किंचित्मात्र भी भला (अच्छा) नहीं समझता–उसके प्रति लेशमात्र राग नहीं करता, और निश्चय से तो उसके राग का स्वामित्व ही नहीं है। इसलिए उसके लेशमात्र राग नहीं है।

यदि कोई जीव राग को भला जानकर उसके प्रति लेशमात्र राग करे तो–वह भले ही सर्व शास्त्रों को पढ़ चुका हो, मुनि हो, व्यवहारचारित्र का पालन करता हो तथापि–यह समझना चाहिए कि उसने अपने आत्मा के परमार्थस्वरूप को नहीं जाना, कर्मोदयजनित राग को ही अच्छा मान रक्खा है, तथा उसी से अपना मोक्ष माना है। इस प्रकार अपने और पर के परमार्थस्वरूप को न जानने से जीव–अजीव के परमार्थ स्वरूप को नहीं

जानता। और जहाँ जीव तथा अजीव-इन दो पदार्थों को ही नहीं जानता वहा सम्यग्दृष्टि कैसा? तात्पर्य यह है कि रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता।

गाथा - २०१-२०२ पर प्रवचन

अब पूछता है कि रागी (जीव) सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं होता? अन्दर अमृतचन्द्राचार्य का प्रश्न है। **'कथं रागी न भवति सम्यग्दृष्टिरिति'** ऊपर संस्कृत है। संस्कृत है। महाराज! सम्यग्दृष्टि रागी नहीं? यह कैसे है? आहाहा!

परमाणु-मित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागम-धरो वि।।२०१।।

अप्पाण-मयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो।।२०२।।

अणुमात्र भी रागादिका, सद्भाव है जिस जीव को।
वो सर्व आगमधर भले ही, जानता नहिं आत्म को।।२०१।।

नहिं जानता जहँ आत्म को, अनआत्म भी नहिं जानता।
वो क्योंहि होय सुदृष्टि जो, जीव अजीव को नहिं जानता?।।२०२।।

२०१ है न? और २०२, दो गाथाएँ हैं। **टीका :- जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है...** आहाहा! सद्भाव का अर्थ राग का अंश है, उससे लाभ होगा, ऐसा। **अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का...** कहा न? वैसे तो ज्ञानी को राग होता है, दसवें गुणस्थान तक उसे राग होता है। लोभ का राग दसवें में है, छह कर्म भी बँधते हैं। दसवें गुणस्थान में छह कर्म बँधते हैं। सम्यग्दृष्टि को भी सात-आठ कर्म बँधते हैं। राग है परन्तु अज्ञानमय राग नहीं है। आहाहा! गुण-गुणी के भेदरूप जो विकल्प, राग होता है, उस राग का भी जिसे प्रेम है, आहाहा! और उस राग की भी जिसे रुचि है और राग में जिसे रस है... आहाहा! **वह भले ही श्रुतकेवली जैसा हो...** आहाहा! 'सर्व आगम धर्म' ऐसा शब्द लिया है न? सर्व आगम कण्ठस्थ किये हों, अरबों श्लोकों का ज्ञान हुआ हो, उससे क्या?

जिसके रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है... अर्थात् राग के अंश को अपना मानता हो, वह भले सब आगम पढ़ा हो, आहाहा! **श्रुतकेवली जैसा हो...** श्रुतकेवली तो नहीं परन्तु श्रुतकेवली जैसा। सच्चे श्रुतकेवली तो सम्यग्दृष्टि होते हैं, वे श्रुतकेवली होते हैं। आहाहा! अरबों श्लोक कण्ठस्थ! आहाहा! परन्तु राग के कण को अपना मानकर, राग से भिन्न स्वरूप का अनादर करके, मिथ्यादृष्टि रहता है। जिसे राग के कण का आदर है, उसे पूर्णानन्द के नाथ का अनादर है। आहाहा! राग आता है, राग होता है परन्तु राग का आदरभाव जिसे है, उसे आत्मा हेय है। परमात्मप्रकाश में कहा है कि जिसे राग के अंश का भी आदर है, उसे भगवान आत्मा हेय है। परमात्मप्रकाश में लिखा है। आहाहा! और जिसे भगवान आत्मा उपादेय है, उसे रागमात्र—जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी अपराध है, अपराध है। आहाहा! पुरुषार्थसिद्धियुपाय में आया है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधता है, वह भाव अपराध है, ऐसा आया है। और पर की दया पालने का भाव / राग आया, वह भी अपराध है। आहाहा! ऐसा बहुत कठिन काम। यह तो भगवान का—वीतराग का मार्ग है। आहाहा!

कहते हैं **भले ही श्रुतकेवली जैसा हो...** श्रुतकेवली जैसा। श्रुतकेवली तो सम्यग्दृष्टि होता है। वह भावश्रुतकेवली और उसका शास्त्र का बारह अंग का विशेष ज्ञान हो तो श्रुतकेवली है। यहाँ तो श्रुतकेवली जैसा। सर्व आगम धर, पाठ है न? सर्व आगम जानता है। आहाहा! तथापि **रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव...** यह राग लाभदायक है, ऐसा। लेशमात्र राग कहा है तो राग तो समकिती को तीन कषाय का राग है, परन्तु राग को अपना मानता है, ऐसा लेशमात्र भी भाव हो... अज्ञानमय कहा है न? आहाहा! **अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव है... रागादि अज्ञानमय भावों के लेशमात्र का भी सद्भाव...** आहाहा! **वह भले ही श्रुतकेवली जैसा हो, तथापि वह ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण...** आहाहा! शुभराग के अंशमात्र को भी आदरणीय मानता है, (वह) अज्ञानमय रागभाव है। वह श्रुतकेवली जैसा हो, तथापि वह **ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण...** उसे राग से भिन्न भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति प्रभु के ज्ञान का अभाव है। ज्ञानी के ज्ञान का अभाव है। 'ज्ञानी' शब्द से आत्मा। आहाहा!

चिदानन्द प्रभु त्रिकाल शाश्वत् टंकोत्कीर्ण ज्ञानपिण्ड प्रभु। आत्मा तो शाश्वत्

ज्ञानपिण्ड है। आहाहा! टंकोत्कीर्ण कहा न? टंकोत्कीर्ण कहो या शाश्वत् कहो। आहाहा! शाश्वत् वस्तु अन्दर पूर्णानन्द प्रभु पड़ी है, उसका जिसे अनादर है और लेशमात्र राग है, उसका आदर है, वह **ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता;...** राग का एक अंश भी है, उसकी जिसे रुचि है, आदर है तो भले उसका श्रुतकेवली जैसा जानपना हो, तथापि वह अज्ञानी है, आत्मा को नहीं जानता। क्योंकि आत्मा रागरहित है, उसका ज्ञान नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम। अभी तो धमाल... धमाल... धमाल.. यह करो और यह करो... यह करो और यह करो।

'सोगानी' तो कहते हैं कि जहाँ करना है, वहाँ मरना है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश। मिला है? भैया! द्रव्यदृष्टि प्रकाश सोगानी का? मिला है? नहीं मिला। यह बहिन के वचनामृत मिले? द्रव्यदृष्टि प्रकाश नहीं मिला। सोगानी का बनाया हुआ है। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है, दोपहर में आकर ले जाना। उसमें सोगानी ने लिखा है कि मैं कुछ करूँ, ऐसा करने का भाव, वह स्वरूप का मरना है। समझ में आया? 'करे कर्म सो ही करतारा,करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा; जाने सो कर्ता नहीं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई।' बनारसीदास। है तो अमृतचन्द्राचार्य का, अमृतचन्द्राचार्य के कलश हैं, उसका इन्होंने समयसार नाटक में हिन्दी बनाया है। 'करे कर्म सो ही करतारा' राग का विकल्प है, उसे करे, वह कर्ता है, अज्ञानी है। 'जो जाने सो जाननहारा' ज्ञानी तो जानता है कि राग है। परन्तु जानता है, मेरा नहीं, मुझे लाभ नहीं, मुझमें नहीं, उसमें मैं नहीं। आहाहा! 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा; कर्ता सो जाने नहीं कोई।' मैं राग का कर्ता, रचनेवाला हूँ—ऐसा माने, वह आत्मा को नहीं जानता। 'जाने सो कर्ता नहीं होई' आहाहा! आत्मा ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्यमूर्ति का जिसे ज्ञान हुआ, वह राग का कर्ता नहीं होता। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, **ज्ञानमय भावों के अभाव के कारण आत्मा को नहीं जानता; और जो आत्मा को नहीं जानता, वह अनात्मा को भी नहीं जानता...** राग अनात्मा है, आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम, वे अनात्मा हैं। जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं, उसे अनात्मा का भी ज्ञान नहीं। दोनों का ज्ञान नहीं। आहाहा! है? **क्योंकि स्वरूप से सत्ता और पररूप से असत्ता...** आहाहा! देखो! अब जरा सूक्ष्म बात है। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)